निर्भय सिंह की कविताएँ

शोध छात्र (हिन्दी विभाग)
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़

माँ की आस

वो पलकें बिछाएं देख रही है,
मेरे आने को-
वो आएगा? सेहरा बांधे
सफलताओं का-
मेरी अंधेरी दुनिया
प्रकाशमान हो उठेगी?
न जाने इन ख़्वाबों में

एक मैं हूँ कि-
असफलताओं का सेहरा बांधे
चला ही आ रहा हूँ-
मैं उसकी आस का निराश हूँ।
जो लोगों को
ख़्वाबो के बदले
निराशाएं देते आते है।

वो आंखे पलके बिछांए
मेरा इन्तजार करती रहती है-
तुम आवोगें-कब?
इस मेरी बची हुई दुनियां में
खुशियां भरोगें- कब?
लेकिन-
इस आशा भरी दुनियां में
वह आस लगाएं बैठी है।
वह जानते हो कौन है?-
मेरी जन्मदात्री माँ है।
जो भी हूँ, जैसा भी हूँ,
उसी का प्रतिरूप हूँ।
मुझसे उसका आस
लगाना जायज़ है।
लेकिन एक मैं हूँ-
कि जो उसे निराश ही किए
जा रहा हूँ।
न जाने कब तक?
उस आस पर ख़रा उतरूगां?

मित्र से सीख

एक मेरे मित्र थे। जो
मेरे निकटतम थे।-
सूंघ कर ही मेरी
स्थिति-परिस्थिति भांप लेते-
पर वो आज कहने पर
भी नहीं सुनते।
अब कहते है, कि-
मैं खुदा तो नहीं जो

बन्दे की रज़ा जानूँ।

पर ये ही सज्जन है-
जो मन की भाषा पढ़ते
और उसका निराकरण भी करते।
अब। बस! फर्ज़ आदयगी
शेष है।-
पर आज भी वह मेरे मित्र है।
जैसे भी है, वो मेरे मित्र है।
मित्र! तो दोस्ती का अंग है। जिसे-
ख़राब होने पर काटा नहीं जाता।
क्योंकि-
अंग को काटने पर शरीर अपंग हो जाता है।
पर वो वैसे मित्र है जो
बुरे वक्त में मेरा
मज़ाक ही उड़ाया। लेकिन-
तब भी मैं उन्हें अपना मानता हूँ।
क्योंकि-
ये वहीं सज्जन है,
जिन्होंने-मुझे खड़े होने का
एहसास कराया। कि-
अब तुम्हें
मुझ जैसी बैसाखी पर
भरोसा नही करना। क्योंकि-
ये ऐसे वक़्त टूट ही जाती है।
ये अब तक ऐसी वैसाखी साबित हुए
जे बुरे वक्त में साथ छोड़ देती है।
तो मेरे हालात् ने ऐसी बैसाखी
का सहारा ही लेना छोड़ दिया।

अब तो मुझे अपने टूटे
पैरो पर ही भरोसा है। क्योंकि-
वो जैसे भी है, अपने है।
जो हर स्थिति- परिस्थिति में
अपने साथ खडे रहते है।

बेरोजगार की दास्तां

मैं एक दिन बैठा!
सोचा! समझा! क्यूँ न
कुछ लिखूँ!
क्या लिखूँ?
फिर मन में आया,।-
क्यूं न अपनी अंधेरी दुनिया की
कुछ दास्तां ही लिखूँ?
मैं काफी देर तक सोचता रहा?
फिर मैंने पाया कि-
मेरे जीवन के हालात
मिश्र के पिरामिडों में रखे
उन ममियों की
तरह हो गई है। जो-
आने वाले कल का
सूरज देखना चाहते है। और-
जीवन की आस लिए
लम्बे समय से विश्राम में है।
कोई समय आवेगा?
जब हम जी उठेगे?
और दुनिया हमारा
रूप देख सकेगी?
न ही वह समय आया
न ही उस समय के लोग आयें।
जीवन अन्धकारमय था,
अन्धकारमय रह गया।
अच्छे की आशा में-
बुरा भी नहीं आया!
फिर भी एक आस में
जी रहा हूँ, कि-
आने वाला कल अच्छा होगा।
होगा कि नहीं होगा
कुछ पता नहीं? लेकिन-
अच्छे दिन क इन्तजार में हूँ।
शायद ही वह किसी समय आए? बस-
अपनी दास्तां, कुछ यूं ही ख़त्म हुई।